# हरियाणवी लोकनाट्य शैली सांग

**महिन्द्र कौर**

सहायक प्रोफेसर, (संगीत विभाग)
आर्य पी.जी. कॉलेज, पानीपत

सांग उतर भारत के कई राज्यों में प्रचलित है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उतर प्रदेश में तो इसकी दीर्घकालीन परम्परा रही है। हरियाणा प्रदेश में 'सांग' समृद्ध लोकरंग मच का अंश है यह हरियाणा का अत्यन्त लोकप्रिय लोकनाट्य है इसमें किसी भी कथा अथवा कहानी को अभिनय, नृत्य और संगीत द्वारा पेश किया जाता है।

सांग शब्द स्वांग का तद्भव रूप है जिसका शाब्दिक अर्थ है– भेश भरना, रूप भरना अथवा नकल करना। सांग को नौटंकी का पर्याय माना जाता है। हरियाणा प्रदेश में सांग भरना एक लोकोक्ति है जिसका अर्थ होता है– रूप बनाना अथवा रूप भरना। वास्तव में स्वांग वह रूप बनाना कहलाता है जिसमें प्रयास करने का भी रूप का यथा तथ्य आरोपण न हो सके तथा पात्र में विकृति उत्पन्न हो जाए।

हरियाणा में यह परम्परा कई वर्षो से चली आ रही है। प्राप्त साक्ष्यों के मतानुसार सांग यह रूप लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। प्रारम्भ में सांग भजन–कीर्तन और नौंटकी के रूप में प्रचलित था। उस समय किशन लाल भाट ने सांग को नई दिशा प्रदान की। अतः किशन लाल भाट को पहला सांगी माना जाता है। उस समय सांग को मुजरे की तरह प्रस्तुत किया जाता था। सांजिदे नायक–नायिका के पीछे घूम घूमकर साज बजाते थे।

इस संर्दभ में पं० लखमीचन्द के शिष्य पं० मांगेराम की निम्नलिखित पक्तियों से हमें सांग परम्परा का परिचय मिलता है–

''हरियाणा की कहानी सुण ल्यो दो सौ साल की।
कई किस्म की हवा चाल्यी नई चाल की।
एक ढोलकिया एक सारगिया खड़े रहै थे,



एक जनाना एक मरदाना दो अड़े रहै थे,
पदंरा–सोला कुंगर जुड़ कै खड़े रहै थे,
गली और गित वाइया के म्है बड़े रहै थे
सबतै पहलम या चतराई किरन लाल की।''

प्रारम्भिक युग (1750–1850) की अपेक्षा मध्ययुग (1850–1950) में सांग विधा ने एक नया रूप ग्रहण किया जिसका श्रेय प० दीपचन्द को जाता है। दीपचन्द ने वर्षो से चली आ रही सांग परम्परा में पर्याप्त परिवर्तन किया। दीप चंद ने सांग के लिए एक ऊंचे मंच की व्यवस्था करवाई, शामियाना लगवाया, रोशनी के लिए मशालों के स्थान पर गैस से जलने वाली लालटेनों का प्रयोग शुरू किया और वेशभूषा में भी परिवर्तन किया साड़ी के स्थान पर धाधरा और आंगिया का परिधान शुरू हुआ। इस प्रकार दीप चंद ने सांग–संसार में युग प्रर्वतक का कार्य किया तत्कालीन परिस्थितियों को हम प० मांगेराम की सांग परम्परा से सम्बन्धित प्रचलित रागनी की निम्नलिखित पक्तियों में देख सकते है

''एक सौ सतर साल बाद फेर दीपचंद हो गया,
साजिन्दे दो बण दिए और घोड़े का नाच बंद हो गया।
नीच्चे काला दामण ऊपर लाल कंध हो गया,
चमोले को भूल गए न्यू सारा छांद हो गया,
तीन काकिए गाए या बाणी रंगत हाल की।''

इसी युग में प० दीपचन्द के अतिरिक्त हरदेवा स्वामी, पं० स्वरूपचन्द, हुकमचन्द, दुलीचन्द आदि सागियों ने भी सांग परम्परा के विकास में महत्वपूण्र भूमिका निभाई। इसी युग में पं० लखमीचन्द का आगमन हुआ, जिन्होने इस विद्या को एक नया मोड़ दिया । सन् 1925 के आसपास इन्होने सांग संसार में पर्दापण किया और सांग को नया रूप प्रदान किया। इन्होने सांगो को पारम्परिक रूढियों को मुक्त करके उनमें प्रेम और यौवन का ऐसा ताना बुना कि सभी दंग रह गए। पं० लखमीचन्द ने धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, काल्पनिक आदि सभी प्रकार के सांगों की रचना की उनके लगभग 25 सांग है राजा भेज, गोपीचन्द, भरभरी, फीचक, विराट, पर्व, नल दयामंती, सत्यावा सावित्री द्रोपदी चीरहरण, रूप बंसत, पूरण मल, जैमल फता आदि। इसलिए मध्ययुग को सांग परम्परा का स्वर्णयुग माना जाता है। हरियाणवी सांग परम्परा के वर्तमान युग का

परम्परा 1950 ई० के आसपास माना जाता है। इस युग के प्रमुख सांगी प० मांगेराम थे, जो पं० लखमीचंद के शिष्य थे। पं० मांगेराम के सांगो को रचा जिनमें से रूप बंसत, धरू भगत, किरसन जन्म बहुत ख्याति प्राप्त सांग है।

मांगेराम के अतिरिक्त सांग की परम्परा आगे बढ़ाने वाले सांगियों में धनपत, हुस्यारे प्यारे, तुले राम, चन्द्रबादी, महावीर, कर्मवीर और धर्मवीर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

लोकमाध्यम सांग के संघटक

1. मंचः—

सांग का मंच आडम्बर हीन व सीधा सादा खुले स्थान पर होता है। मंच पर किसी पर्दे की व्यवस्था नही होती, खुले मंच पात्र अभिनय भी करते है और आवश्यकता होने पर हुक्का भी पी लेते है। साजिन्दे एक और अपने वाद्यों को मिलाते है और अभिनेता कभी मंच के एक और आकर गाने लगते है कभी मचं के मध्य में आकर अभिनय करते है।

2. गूगा घमोडाः—

सांग के आरम्भ होने से पूर्व गूगा घमोड़ा नाचने की परम्परा आम थी, यह इस बात का प्रतीक थी कि अब सांग आरम्भ होने वाला है।

3. मशालचीः—

सांग के आरिम्भक काल में प्रकाश का उचित प्रबन्ध नही होने के कारण मशालों से काम लिया जाता था। एक व्यक्ति आवश्यकता अनुसार मचं पर इस प्रकार घूमता था कि पात्रों के अभिनय में विहन न पड़े। आधुनिक काल में प्रकाश की सम्पूर्ण व्यव्स्था हो जाने के कारण इसकी विशेश आवश्यकता नही रही।

4. कथानकः—

सांग प्रबन्धपेक्षी नाट्य विद्या है। सांग का विषय कोई भी हो सकता है। राजाराम शास्त्री का कथन है कि लोक नाट्यकार कथानक को कोई बन्धन नही मानता। वह उपयुक्त जाचने पर अपनी कथानक पुराण से ले सकता है, इतिहास से ले सकता है लोक कथा और कल्पना से भी काम चला सकता है। नाटक का लक्ष्य इतिहास कहना मात्र नही है, अपितु, भावभिव्यक्ति है। सांगो में लोकजीवन विविध पक्षों की मधुर एवंम सरल अभिव्यक्ति होती है। लोक जीवन की समस्त सुघड़ताओं कुछडताओं को उनके मूल रूप से यहॉ उद्घाटित किया जाता हैं



5. पात्रः—

पूरे कथानक को प्रदर्शित करने के लिए चार या पॉच पात्र ही होते है। जिनमें दो पात्र स्त्री वेशधारी और दो या तीन पात्र पुरूष वेशधारी होते है। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी पात्र का स्थानापन्न हो सकता है। सांगो में नक्काल(नकली) का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। वह दर्शकों की नब्ज पहचान का ऐन मौके पर ऐसे परिहास करता है। कि हॅसते 2 दर्शकों के पेट में बल पड़ जाते है।

6. कथोप कथनः—

सांग में वार्ता और संगीतात्मक कथोपकथन प्राया दो मुख्य अंग होते है। वार्ता गघ में होती है जबकि संगीतात्मक कथोपकथन पघ रूप में किया जाता है। रागनी का जवाब रागनी में, दो कली का जवाब दो कली में और पंक्ति का जवाब पंक्ति में दिया जाता है।

7. नृत्यः—

स्त्री वेशधारी पात्रों द्वारा मंच पर नृत्य किया जाता हैं। लेकिन यह नृत्य केवल कथानक को स्पष्ट करने या उसे रंजकता प्रदान करने मात्र के लिए ही किया जाता हैं नृत्य की सहायता से एक और से दूसरी और आने जाने तथा प्रस्तुत भाव भंगिकाओं में रोचकला लाने में नृत्य अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है।

8. साज और साजिन्देः—

सांग में अधिकतर सारंगी और ढोलक का प्रयोग किया जाता हैं कभी 2 नगाड़ा, ढफली और खंजरी का प्रयोग भी किया जाता है इन वाद्यों का प्रयोग केवल सांग में रंजकता लाने, पात्र द्वारा गाए, गये पध की टेक उठाने तथा कथानक के महत्वपूर्ण पक्षों को उजागर करने के लिए और विशिष्ट स्थान पर जोरदार ढंग से वाद्यों को बजाकर दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

9. छन्दः—

सांग का छंद गीति छंद है। यह छंद साहित्य के छंद शास्त्र में समन्वित छंदों से भिन्न है। किसी समय छन्द में चौबोला प्रधान था, बाद में काफिया प्रधान छन्द हुआ और उसके बाद रागनी को स्थान मिला। काल क्रम में सांग के साथ गायी जाने वाली किसी भी गत को रागनी के नाम से जाना जाता है।

सांग को हरियाणा का ओपन थियेटर कहा जाता है। जिसका प्रदेश में बड़ा मान है। किसी कौमी गायक सांगी का कोई भी पूर्ण या अपूर्ण सांग देखने के पश्चात दर्शक का हृदय इसकी ओर अनायास आकृष्ट हो जाता है। लम्बा कथा गीत सांग का प्राण है और एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। सांगियो द्वारा प्रस्तुत धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवंम प्रेम मूलक इन कथाओं में स्थानीय जनता रामायण से भी अधिक रस लेती है। ये रससिद्ध सांगी अपने छोटे से साज बाज और अल्प उपकरणों के द्वारा रस के ऐसे उत्स बहते है, श्रोता वृद अपनी अवस्था को भूलकर उसमें गोते खाने लगता है।

जन रंजकारी यह विद्या हरियाणा के लोकमानस पर जादू सा प्रभाव डालती है। इसके रंगमंच के चारों और बैठे दर्शक रागनियों की स्वर लहरियों ने अनुस्भूत एवंम वाद्य संगीत स्नाता कथा को देख सुन कर मंत्र मुग्ध हो जाते है। रसानुभूमि के लिए सुपरिचित आशा का होना जरूरी है, वह ऐसी हो कि श्रोताओं के भाव नन्तुओं को प्रथम आधात में ही झंकृत कर दे। ये गुण विशेषताएं इन सांगों में है।

हरियाणवी सांगो में संकतो का बहुलता से प्रयोग होता है। जो संचार के लिए अति आवश्यक है। अनेक बाते बिना शब्दों का गामा पहने ही अर्थ व्यक्त हो जाती है। लोक मीडिया जैसे सांग और स्कीट विकास संचार में महत्वपूर्ण भूमिका अढा कर सकते है। प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षण कार्य के लिए भवन निर्माण और दूसरे विकास कार्यो के लिए धन एकत्रित करने का काम सांग के माध्यम से किया जाता है। कन्या भ्रूण हत्या, परिवार, नियोजन और दहेज एवंम दूसरी सामाजिक बुराइयों से निपटने में सांग जैसा लोकप्रिय माध्यम ही अधिक कारगर सिद्ध हो रहा है।